13. Adivasi

(21)

खण्ड - 2

# झारखंड पुनर्निर्माण का सच

**भाग एक : विचारधाराएँ**

## 'आदिवासी' राज्य झारखण्ड की आदिवासियत

**डॉ. जोसेफ मरियानुस कुजूर***

सन् 2000 में नवनिर्मित राज्य छत्तीसगढ़, उत्तरांचल तथा झारखण्ड तीनों क्रमशः मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा बिहार से 1, 9 तथा 15 नवम्बर को विभाजित हो गये थे। तीनों राज्यों की विविध प्रकार की समस्याओं के बावजूद सबसे सामान्य समस्या है तिरस्कार तथा विकास की कमी के कारण उत्पन्न पिछड़ापन। छोटे राज्यों के निर्माण के साथ दो मुख्य विचारधाराएँ जुड़ी हुई हैं। पहली विचारधारा के अनुसार छोटे राज्यों के निर्माण को देश की 'एकता तथा अखण्डता' के लिए 'खतरा' समझा जाता है (शर्मा 2003:3973)। दूसरी विचारधारा "क्षेत्रीय, राजनैतिक तथा सामाजिक आकांक्षाओं" की हिमायती है। यह इस बात पर जोर देती है कि छोटे राज्य के निर्माण से ही "प्रशासन के ढाँचे को तिरस्कृत और पिछड़े क्षेत्रों के करीब लाया जा सकता है" (कुमार 2002:3705)।

### प्रथम विचारधारा

प्रथम विचारधारा के समर्थकों की मान्यता है कि अक्सर नये राज्यों की मांग "क्षेत्रीय तथा भाषायी कट्टरपंथ" से प्रेरित है। उनकी दलील यह है कि इस तरह की मांगों से क्षेत्रीयता और विखंडता को बढ़ावा मिलता है। अतः बजाय इसके कि नये–नये राज्यों की स्थापना हो, संविधान में पहले से ही मौजूद प्रावधानों के जरिये सशक्तिकरण की प्रक्रिया बरकरार रहे अन्यथा नये राज्यों की मांग के बहुत खतरनाक दूरगामी परिणाम हो सकते हैं (देखें, शर्मा 2003 : 3973-75)। उनका विश्वास है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 3, जिसमें राज्यों की सीमाओं में फेरबदल के द्वारा नये राज्यों के निर्माण के लिए प्रावधान है, जिसका क्षेत्रीय तथा भाषायी आकांक्षाओं के लिए गलत प्रयोग किया जा रहा है तथा यह राजनीति लाभ का एक तरीका बन गया है। वे मानते हैं कि 'भाषायी तथा सांस्कृतिक विशिष्टता' के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की माँग में 'चतुर राजनीतिज्ञों' का हाथ होता है, जो अपना हित साधने के लिए भोले–भाले लोगों की साम्प्रदायिक प्रवृत्ति को भड़काते हैं। शर्मा क्षेत्रीय अस्मिता की अहमियत को मानते तो हैं, परन्तु इसे वे एक अभिशाप के रूप में पाते हैं, जब 'राजनीतिक पार्टियाँ अपनी सत्ता की हवस पूरी करने तथा राजनीतिक लाभ प्राप्त करने के लिए' एक अलग राज्य की माँग करते हैं। उनका मानना है कि 'विकास' के लिए राज्यों को तोड़ने की आवश्यकता नहीं है। वे इस मत

* विभागाध्यक्ष, ट्राइबल और दलित स्टडीज़, भारतीय सामाजिक संस्थान, नई दिल्ली

को नहीं मानते कि बेहतर अधिशासन तथा सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए राज्यों का छोटा होना जरूरी है। वे 'छोटा है तो खूबसूरत है' की धारणा को भ्रामक मानते हैं। उनका कहना है यदि कोई व्यक्ति यह सोचता है कि सारी समस्याओं के निवारण के लिए नये राज्यों का गठन हो तो यह बहुत बड़ी भूल होगी। आगे वे टिप्पणी करते हैं कि :

> "समय की मांग है कि पहले से गठित राज्यों के विकास पर ज्यादा ध्यान एकाग्रचित किया जाए। राज्य के छोटा या बड़ा होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। इसे संचालित करने के लिए पूर्ण ईमानदारी तथा कर्तव्य परायणता के साथ एक मजबूत राजनीतिक इच्छा की आवश्यकता है। विकास के लिए यह जरूरी है कि नेता व नागरिक दोनों समुचित वातावरण तैयार करें" (शर्मा 2003:3974)।

**द्वितीय विचारधारा**

शर्मा के तर्क में अंतर्विरोध नजर आता है जब वे कहते हैं कि 'पहले से गठित' राज्यों में विकास के लिए समुचित वातावरण' चाहिए। द्वितीय विचारधारा के प्रतिपादक प्रथम विचारधारा के तर्क का इस्तेमाल अपनी दलील को आगे बढ़ाने के लिए करते हैं। उनके मुताबिक 'विकास के लिए समुचित वातावरण' की संभावना बड़े राज्य में नहीं अपितु छोटे राज्य में ही छिपी है। संजय कुमार (2002:3705-09) यह मानते हैं कि राज्य की सभी समस्याओं का निदान छोटे राज्यों के निर्माण मात्र से हो जाए यह कोई जरूरी नहीं, परन्तु वे जोर देकर कहते हैं कि जिन बड़े राज्यों में लोग क्षेत्रीय भेदभाव तथा सत्ता के गलियारे में असमान पहुँच को मानते हैं, उसके निदान के लिए कुछ हद तक छोटे राज्यों का निर्माण सही है। वे आगे यह भी कहते हैं कि :

> "इतिहास गवाह है कि हरियाणा तथा हिमाचल प्रदेश ने छोटे राज्य बनकर सकारात्मक परिणाम दर्शाये हैं। हिमाचल प्रदेश पहाड़ी क्षेत्र होने के बावजूद साक्षरता के सिलसिले में सफल रहा है और इसका पूर्ण श्रेय उसके आकार को जाना चाहिए, जिसके कारण प्रशासनिक ढाँचे के लिए यह संभव हो सका कि वह जनता जनार्दन तक पहुँच सके। हरियाणा पंजाब के तहत् हिन्दी बोलने वाला अविकसित, तिरस्कृत क्षेत्र होता यदि यह एक अलग राज्य न बना होता। उत्तर पूर्व में आज ऐसी सफलता देखने को नहीं मिलती, लेकिन असली प्रश्न तो यह है कि यदि ये बिलकुल विभाजित न होते तो क्या उनकी स्थिति बेहतर होती? अगर ये राज्य विभाजित न हुए होते तो शायद हम आज एक खुले गृह युद्ध की गवाही दे रहे होते" (वही 2002:3708)।

**तीसरी विचारधारा**

उपरोक्त इन दोनों स्थितियों के अलावा छोटे राज्यों के पक्ष तथा विपक्ष में राज्यों के पुनर्गठन पर एक तीसरा सिद्धाँत है। इसमें पहले सिद्धांत के तहत् संघीय ईकाइयों के निर्माण के लिए भाषायी साक्षमता, सांस्कृतिक एकरूपता तथा जनसमर्थन पर जोर दिया जाता है (वही 2002:3705)। इसके विपरीत कुछ लोग दृढ़तापूर्वक यह तर्क देते हैं कि



नये राज्यों की माँग का मूलाधार 'विकास होना चाहिए न कि 'सांस्कृतिक पहचान'। वे ये भी कहते हैं कि तुलनात्मक रूप से संसाधनों का दोहन तथा विकास की कमी संबंधी समस्याएँ सांस्कृतिक पहचान तथा सहसम्बद्धता की अपेक्षा ज्यादा उजागर होती है। स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक विकास के शुरूआती वर्षों में यह एक मजबूत शक्ति के रूप में दिखाई देता था (कुमार पी. 2000 : 3078-79)। वे ये भी कहते हैं कि बड़े अविभाजित राज्यों में आर्थिक व प्रशासनिक लापरवाही के नतीजे के रूप में अलग राज्यों की माँग होती थी (वही:3082)। सामान्यतः छोटे राज्यों की माँग के लिए महत्वपूर्ण कारण 'विकास' तथा 'आर्थिक लापरवाही' रहे हैं यदि हम जनजातीय राज्यों की बात करते हैं, परंतु संघीय ईकाइयों के पुनर्गठन के लिए केवल 'आर्थिक' पहलू को तूल देना एक बहुत बड़ी भूल होगी। इसीलिए राज्यों के बंटवारे का मूलाधार यह है कि जनजातीय लोग ही जनजातीय लोगों की समस्या का हल कर सकते हैं, क्योंकि वे ही इस तथाकथित विकास के शिकार हैं। इस अवधारणा के अनुसार उनका विकास केवल ढाँचे के विकेन्द्रीकरण से संभव है। यह जनजातीय लोगों के स्व–शासन से ही संभव है। क्योंकि जब केन्द्रीयकृत प्रशासन होता है तब जनजातीय लोगों की पीड़ा होते हुए भी नजर नहीं आती है। यदि प्रशासन निष्कपट भी होता है तो जनजातीय लोगों की दुर्दशा के प्रति संवेदनशीलता नहीं होती। इस लोकतंत्र की यही समस्या है कि जनजातीय विकास की प्रक्रिया केवल सतही तौर पर होती है। इसीलिए प्रशासन की छोटी ईकाइयों को निर्मित करके इस राजनीतिक व्यवस्था में सुधार किया जाए, जो अधिशासन की केन्द्रीयकृत व्यवस्था की बुराइयों को दूर करने के लिए ज्यादा संवेदनशील, स्थानीय तथा विकेन्द्रीकृत होगी।

एक ठोस उदाहरण यहाँ सहायक साबित हो सकती है। जर्मनी के छोटे राज्य बहुत विकेन्द्रीकृत हैं, विशेषतथा संस्कृति के स्तर पर, जैसे पुरानी मान्यतायें, पुराना इतिहास, भौगोलिक परस्थितियाँ तथा भाईचारा, आदि। हर समुदाय की एक की अपनी स्मृति होती है जो लोगों की सोच तथा कृत्यों पर प्रभाव डालती है। लोगों का एक स्मरणीय इतिहास है। उनकी सामूहिकता की स्मृति केन्द्रीयकृत संगठन के द्वारा हमेशा समझी नहीं जा सकती। यह स्मरण समूह की पहचान के लिए योगदान देता है, क्योंकि स्मृति तथा पहचान एक दूसरे से जुड़े हैं। पहचान केवल भूतकाल की नहीं बल्कि भविष्य की भी है – वह भविष्य जो उनकी मान्यता, स्वतंत्रता तथा अपनी पहचान को उजागर करती है। जनजातीय लोगों के भविष्य दर्शन का तालमेल केन्द्रीय अधिकरण के साथ नहीं होता। संघर्ष इसलिए उठते हैं क्योंकि स्थानीय लोगों के भविष्य का सपना कुछ केन्द्रीय शक्ति एवं सत्ता से भिन्न होता है। मार्क्सवाद के अनुसार यह वर्ग–संघर्ष कहलाता है। अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय स्तर पर विशिष्ट वर्ग के लोग हाशिये के लोगों के साथ सहानुभूति नहीं रखते।

मेरा मत यह है कि जन–साधारण से तथा उनके वातावरण, संस्कृति तथा उनके इतिहास से जो कुछ भी उजागर होता है, उसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। यह विचार संघवाद के सिद्धांतों के अनुकूल है। संघवाद की अवधारणा छोटे सांस्कृतिक समूहों

की वास्तविकता को वृहद समूह के अंग के रूप में मान्यता देती है। संघवाद का सार तत्व विलियम एस. लिविन्सटीन के अनुसार सांविधानिक या संस्थागत ढाँचे में नहीं, बल्कि यह स्वयं समाज में है। संघात्मक सरकार एक माध्यम है जिसके द्वारा समाज के संघीय गुण मुखरित होते तथा सुरक्षित रहते हैं (जैसा खान द्वारा उद्धृत 1998:181)। मिखाएल वर्गेस के अनुसार संघवाद संघ तथा स्वायत्तता का मिश्रण है। संघवाद की यह विशिष्ठ स्थिति सांस्कृतिक विभिन्नता और बहुआयामी अस्मिता के विचार को बरकरार रखती है, जो संघीय राष्ट्र निर्माण के रूप में स्पष्ट तौर पर परिलक्षित होती है (जैसा सुरेश में उद्धरित 1998:53-4)। डानिएल जे. एलाज़ार के मत के अनुसार संघवाद व्यक्तियों और समूहों को लंबी अवधि तक समेटे रखता है, ताकि सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के साथ–साथ सभी पार्टियों की स्वायत्तता और अस्मिता बरकरार रह सके। अतः एक ऐसी बहु–आयामी अनुमूर्ति जो दूर और पास, सामान्य और विशेष, देश और क्षेत्र, क्षेत्र और पड़ोस, पड़ोस और स्थानीय इत्यादि, को जोड़कर रखे, वही संघवाद है (नारायण 1998:vii- ix)। बृहत् तौर पर विकेन्द्रीकरण की योजना निर्माण, फिर केन्द्रीय सरकार के प्रशासनिक अधिकारी से क्षेत्रीय, स्थानीय तथा स्वायत्त सांगठनिक ईसाइयों के स्थानान्तरण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

ऊपर संघवाद की आत्मा का जिक्र है, उसे सामाजिक तथा ऐतिहासिक ढाँचों में मूर्त रूप से उतारने की जरूरत है। सामाजिक, सांस्कृतिक और मुख्यतः आर्थिक ढाँचे ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के ही परिणाम हैं। अतः बहुतल सामान्य लोगों की आवश्यकताओं के मद्देनजर प्रशासनिक ढाँचे बनाने की जरूरत है। कुछ खास समुदायों पर विशेष सुरक्षा एवं ध्यान देने की आवश्यकता है। बृहत् राष्ट्र एवं समाज के साथ एकात्मकता की जरूरत अवश्य है, पर विभिन्न समुदायों की अस्मिता का सम्मान करते हुए। इस संबंध में प्रख्यात समाजशास्त्री टी. के. वूमेन सुग्राह्यता (assimilation) तथा पृथकता (sessionism) के तालमेल के पक्ष में तर्क देते हुए कहते हैं कि दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं (वूमेन 1998:15-6)।

इस आलेख की दलील यह है कि मुट्ठी भर शक्तिशाली लोगों और उनकी इस विचारधारा कि उनके लिए जो अच्छा है वही दूसरों के लिए भी उपयुक्त है, सभी के कल्याण को नहीं पहचानती है। इस प्रक्रिया में ऐसा प्रयास होता है कि छोटे या कमजोर समूह उन्नति न कर पायें। इसके ठीक विपरीत संघवाद व्यक्तियों को व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से आत्म–अभिव्यक्ति तथा अपनी पहचान की सुरक्षा के लिए उपयुक्त वातावरण पैदा करता है। यह विकास की उस अवधारणा का हिमायती है, जो सामूहिकता और सहभागिता पर विशेष जोर देता है तथा व्यक्तिगत चयन, दूसरों को शामिल करने की प्रक्रिया, मानवाधिकार, लिंग समानता, जातीय पहचान जैसे तत्वों का सम्मान करता है (देखें ड्रेज एवं सेन, यू. एन. डी. पी. 2004)।

झारखण्ड राज्य बनने के समय यह 79,714 वर्ग किलोमीटर में अपने 18 जिलों के साथ फैला हुआ था। उस समय इसकी जनसंख्या 21,843,911 तथा साक्षरता दर



41.39 प्रतिशत थी। इसकी धन सम्पदा, खनिज, सरकारी आय के स्रोत थे (तिवारी व अन्य 2000:14)। यहाँ कुल सीटों की संख्या 81 थी तथा पार्टियों की स्थिति कुछ इस प्रकार थी : बीजेपी – 32; समता पार्टी – 05; जे डी (यू) – 03; जेएमएम (एस) – 12; काँग्रेस – 11; आरजेडी – 09; सीपीआई – 02; सीपीआई (एमएल) – 01; एमसीसी – 01; अन्य –04; (रिक्त) – 01; कुल – 81(देखें वही)।

यह यथार्थ है कि झारखण्ड राज्य के लिए प्राकृतिक तथा खनिज संसाधन ही उसके धन सम्पदा के मूलाधार हैं। नये राज्य के पास उसके अभिभावक (मूल राज्य) में आमदनी के लिए बहुत बड़ा क्षेत्र था लेकिन बदले में बहुत कम पाया। उदाहरण के तौर पर झारखण्ड में देश के खनिजों का 40 प्रतिशत उपलब्ध है। यह राज्य के कोयले, यूरेनियम तथा पयराइट प्रदान करने वाला एकमात्र राज्य है तथा भारत में बाक्साइट, क्वार्ट्ज, सेरामिक्स तथा अन्य खनिजों के अलावा यह कोयला (37.5%), अबरक (90%), क्यानाइट, कॉपर (तांबा) (40%) तथा लौह अयस्क (22%) प्रदान करने वालों में प्रथम है। भूगर्त में छिपे सोना, चांदी, धातुएं, सजावटी पत्थर, बहुमूल्य पत्थर आदि इसके भविष्य की धरोहर हैं। झारखण्ड अन्य संसाधनों से भी सम्पन्न क्षेत्र है जैसे सतही तथा भूगर्त जल, जैवविविधता के साथ जगीन, अनुकूल मौसम, अनुशासित तथा कुशल मानव संसाधन, बिजली की पर्याप्त उपलब्धता, जो कि औद्योगिक ईकाइयों के विकास तथा वृद्धि के लिए आधारिक आवश्यकताएँ होती है। खनिजों के अलावा झारखण्ड में बहुत से औद्योगिक ईकाइयाँ हैं जैसे कि मूरी अल्यूमिनियम फैक्टरी, बोकारो स्टील प्लांट, टिस्को, टेल्को तथा इसी प्रकार और भी हैं। झारखण्ड ने राष्ट्रीय सम्पत्ति में अपना बहुत योगदान दिया था। इन सबके बावजूद झारखंड के विकास पर ज्यादा खर्च नहीं किया गया (तिवारी व अन्य 2000: 12-3)।

## पुनर्निर्माण का सच

प्रारंभ में ये प्रश्न पूछे जाने जरूरी हैं – प्रशासन किसलिए तथा विकास किनके लिए है? यदि ये राज्य उन तिरस्कृत जनजातीय लोगों के विकास के लिए बने थे, तो क्या पिछले पाँच वर्षों में यह उद्देश्य पूर्ण हुआ? हो सकता है पाँच वर्ष किसी भी गुणात्मक परिवर्तन के लिए कम पड़ जाएँ, लेकिन विकास नीतियाँ क्या सही दिशा में उन्मुख है? क्या राज्य के जनजातीय लोगों के सम्पूर्ण विकास के लिए राज्य सरकार तथा प्रशासन संवेदनशील रहे हैं?

## आर्थिक पहलू

आर्थिक मुद्दों को संस्कृति, सामाजिक तथा राजनीतिक परिप्रेक्ष्य के बाहर नहीं देखा जा सकता। सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि क्या बिहार के विभाजन के बाद जनजातीय लोगों को पहले से ज्यादा संसाधन उपलब्ध हुए या केवल विशिष्ट लोगों का ही संसाधनों तथा उनके प्रबन्ध पर नियंत्रण व वर्चस्व रहा? दूसरे शब्दों में, क्या झारखण्ड पूर्णतः बिहार से 'मुक्त' हुआ या अभी भी झारखण्ड में बिहार बसा हुआ है। झारखण्ड सरकार की नई

नीतियाँ तथा कार्यक्रम ये प्रकट करते हैं कि सैद्धांतिक तौर पर तो यह जनजातीय लोगों का कल्याण दूँढ़ता है, पर व्यवहार में जनजातीय लोगों की मान्यताओं तथा दूसरे असुरक्षित समूहों के वसूलों के बिलकुल विपरीत है। बाहर के लोग वहाँ संसाधनों व नौकरियों के अवसरों का लाभ उठा रहे हैं, जबकि वहाँ के वास्तविक स्थानीय लोग अपनी मातृभूमि से निकाले जा रहे हैं। दिन–प्रतिदिन हजारों जनजातीय लोगों को वहाँ से 'सामान्य कल्याण' तथा 'राष्ट्रीय हित' के नाम पर विस्थापित किया जा रहा है। परिणामस्वरूप अब उन्होंने यह पूछना शुरू कर दिया है कि राष्ट्र 'कौन' है तथा राष्ट्र को कौन परिभाषित करता है।

## संघवाद नहीं सिर्फ अर्थ

सामान्यतः मातृ राज्य का विभाजन संघवाद के रूप में पहचाना जाता है। लेकिन व्यवहार में इसकी आत्मा (आंतरिक गुण) पर प्रहार दिखाई पड़ता है। अब तक यह स्पष्ट हो गया है कि नई राज्य सरकार स्थानीय लोगों के सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों के लिए संवेदनशीलता दिखाए बगैर विकास के पश्चिमी मॉडल को अपना रही है। बड़े महानगरों जैसे दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता व अन्य में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के कारण हजारों की तादाद में बेरोजगार लड़के तथा घरों में काम करने वाली लड़कियाँ बाहर जा रही हैं। क्योंकि नए राज्य की आर्थिक नीति जनजातियों के लिए अनुकूल नहीं है। वह केवल औद्योगिकता के अनुकूल है, यह झारखण्ड राज्य की औद्योगिक नीति 2001 को देखकर स्पष्ट होता है। औद्योगिक नीति 2001 पुरजोर तरीके से कहती है कि राज्य का निर्माण 'राज्य के उपलब्ध संसाधनों के उपयोग' के लिए हुआ है। राज्य में संभावित औद्योगिक विकास करने के लिए। राज्य सरकार का दर्शन आर्थिक विकास में वृद्धि करने के लिए ज्यादा से ज्यादा पूँजीनिवेश की दिशा में दिखाई पड़ता है, तथा अनुकूल वातावरण निर्मित कर, रोजगार के अवसर बढ़ाने की ओर भी अग्रसर लगता है। सरकार ऐसे वातावरण के लिए निवेशों, जिसमें विदेशी निवेश भी शामिल हैं, को आकर्षित करने का कार्य प्रभावशाली नजर आता है। इस नीति का उद्देश्य अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, विकलांगों, महिलाओं व कमजोर वर्गों को बेहतर विकास के लिए अवसर तथा विकास प्रक्रिया में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करना है।

इस नीति में आंतरिक विरोधाभास है जो पूर्णतः गरीबों के विरूद्ध है तथा बेरोजगारी का कारण है। यहाँ तक कि अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए झारखंड की औद्योगिक नीति, जो रणनीति बनाती है वह बहुत खतरनाक है। इसके अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में निजी क्षेत्रों की भागीदारी बढ़ाने के लिए कानून में परिवर्तन या संशोधन करने की बात है। औद्योगिक क्षेत्रों के नियमों, कानूनों तथा प्रक्रियाओं में सरलीकरण लाकर अड़चनों को हटाने की बात भी कही गयी है। वास्तव में जनजातीय विकास की अवधारणा व्यंग्यात्मक मालूम पड़ती है, क्योंकि जनजातीय लोगों को नई नीतियों के तहत् उनकी जमीन, उनकी पहचान तथा जीवन से दूर किया जा रहा है।



## जमीन हड़पना एकमात्र लक्ष्य

राज्य में आज तीन औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकरण हैं, जैसे आदित्यपुर (मुख्यालय), बोकारो तथा राँची। ये प्राधिकरण जमीन अधिग्रहण तथा बाहरी संसाधनों रोड, नाले, पार्क, जल आपूर्ति, सार्वजनिक प्रसाधन आदि के लिए कानूनी तौर पर विकास के लिए जिम्मेदार है। अब संथाल परगना के लिए दुमका में मुख्यालय के साथ औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकरण के स्थापना की बात कही गयी है। जनजातीय लोगों के हित का मुद्दा मूलतः उनकी जमीन हथियाने पर आधारित है। छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम 1908 वास्तव में जनजातीय जमीनों को हस्तांतरण तथा उन्हें बेचने पर रोक लगाता है। 1985 तक इस कानून में 24 बार संशोधन हो चुके थे (सिन्हा 2003)। नए राज्य की औद्योगिक नीति का मूलाधार मुख्यतः जमीन कानूनों को लचीला बनाकर नियत उद्यमियों के लिए वांछित जमीन को मुहैय्या कराना है। यह बहुत खतरनाक प्रवृति है।

## किसका विकास?

यह अच्छा है कि नीति में बहुत ज्यादा जोर संचार तथा पर्यटन नेटवर्क जिसमें रेलमार्ग, वायु पर्यटन, सूचना तकनीकी आदि पर दिया गया है। झारखण्ड में राष्ट्रीय राजमार्गों की लम्बाई 1600 किलोमीटर है तथा जबकि राज्य राजमार्गों की लम्बाई 2711 किलोमीटर है। राज्य सरकार एक 333 किलोमीटर का चार लेन राजमार्ग, जो हजारीबाग तथा जमशेदपुर से होता हुआ बाहरगोड़ा तक का है, निर्माणाधीन करने का दावा किया है। यह योजना असम तथा उत्तर पूर्व के लिए भी रास्ता खोल देगा।

राज्य नीति में 2010 तक सूचना तकनीकी सभी के लिए उपलब्ध कराने पर ध्यान देती है, ताकि 2010 तक प्रत्येक 50 व्यक्तियों के लिए एक कम्प्यूटर नसीब हो सके। सूचना तकनीकी सेवाओं जैसे टेली–बैंकिंग, टेली–मीडिसीन, टेली–एजुकेशन, टेली–डॉक्यूमेंट हस्तांतरण, टेली–लिबर्टी, टेली–सूचना केन्द्र, टेली–कॉमर्स, सार्वजनिक कॉल सेन्टर तथा अन्य में दिन–प्रतिदिन बढ़ते सूचना तकनीकी के प्रयोग के बारे में प्रशिक्षण देने की भी योजना है। पर नीति ऐसी लगती है जैसे यह वातानुकूलित कक्ष में बैठकर तैयार की गई हो, क्योंकि यह वास्तविकता से एकदम विपरीत है। झाखण्ड की वास्तविकता तो यह है कि यहाँ साक्षरता दर 40.7 प्रतिशत (ग्रामीण में 38.1% तथा शहरों में 67.8%)] राज्य में कृषक मजदूरों की प्रतिशतता 31 फीसदी है, जिसमें 25.7 प्रतिशत पुरूष तथा 37.8 प्रतिशत महिलाएँ हैं। 2001 की जनगणना के अनुसार जनजातीय जनसंख्या 70,870,68 है, जिसमें 65,000,14 ग्रामीण तथा 5,87,054 शहरी लोग हैं। कुल अनपढ़ जनजातीय लोग 47,48,275 है, जिसमें 45,00,883 ग्रामीण तथा 2,47,392 शहरी हैं। यदि राज्य सरकार ऐसे में प्राथमिक शिक्षा (Primary Education) को वरीयता न देकर केवल उच्चतर शिक्षा (Higher Education) तथा प्रबन्धकीय शिक्षा (Management Studies) पर जोर देगी, तो निश्चित रूप से जनजातीय लोग फिलहाल इससे लाभान्वित नहीं हो सकेंगे।

इस नीति में जो बात खतरनाक दिखाई पड़ती है, वह है सूचना तकनीकी उद्योग में उद्योगपतियों के लिए विशेष सुविधा मुहैय्या करना, जो गरीबों, श्रमिकों एवं जन–साधारण के हितों के विरूद्ध जा सकते हैं। जैसे :

- पर्यावरण संबंधी जटिल कानून से छुटकारा
- जमीन प्राप्त करने के लिए क्षेत्रीय नियमों में ढील
- निम्नलिखित कानूनों को लचीला बनाना जैसे –
  - ★ जल तथा वायु प्रदूषण अधिनियम
  - ★ फैक्टरी अधिनियम
  - ★ रोजगार कार्यालय (रिक्तियों का पंजीयन) अधिनियम
  - ★ वेतन भुगतान अधिनियम, न्यूनतम वेतन अधिनियम
  - ★ ठेका श्रम (नियम तथा उल्लंघन) अधिनियम
  - ★ श्रमिकों की क्षतिपूर्ति/मुआवजा अधिनियम
  - ★ दुकानें तथा स्थापना अधिनियम आदि।

ये सभी श्रमिक विरोधी तथा दरिद्र विरोधी हैं। यहाँ मानव संसाधन विकास की बात बिलकुल सही है, लेकिन जानने वाली बात यह है कि यह योजना कभी शुरू भी होगी। योग्यता विकास तथा उत्पादकता के मुख्य बिन्दु हैं। यह जटिल उद्योगों में भी स्थानीय लोगों के लिए रोजगार सुनिश्चित करता है। नई तकनीकी तथा साधन विकसित किये जा रहे हैं जो स्थानीय युवाओं को उपलब्ध कराये जाने चाहिए।

### नियंत्रण से बाहर निजीकरण

उद्योग के हर क्षेत्र में निजीकरण की सिफारिश की गयी है। जैसे मार्ग निर्माण, मार्गों तथा पुलों का रखरखाव, जल, पर्यटन, दूरसंचार, सूचना तकनीकी आदि। राज्य से विभिन्न पदार्थों के निर्यात आगे बढ़ाने के लिए बहुत से मापदण्ड अपनाए गए हैं। इन पदार्थों में फूल, धातुएँ, हस्तशिल्प, ऑटोमोबाइल, कम्प्यूटर, सॉटवेयर आदि हैं। नीति में ग्रामीण औद्योगीकरण का भी प्रावधान है जैसे – हैण्डलूम (हस्तकरघा), हस्तशिल्प, खादी तथा ग्रामीण उद्योग, रेशम उत्पादन, आदि। राज्य में बहुत से छोटे–मोटे जंगलीय उत्पाद भी उपलब्ध हैं जैसे – महुआ बीज, साल बीज, लाह, तेन्दु पत्ता, हार्रे, बहेड़ा आदि। छोटे–मोटे जंगलीय उत्पादों का प्रयोग बढ़ाने के लिए, उत्पादन बढ़ाने के लिए तथा इस क्षेत्र में विकास के लिए बाजार संबंधी सहायता प्रदान करने के लिए, विकास तथा अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए भी सरकार अवसर तलाश रही है। लेकिन सरकार को भी पता नहीं कि कैसे जनजातीय लोग इन जंगलीय वस्तुओं पर निर्भर हैं तथा कैसे इनका लाभ उठाएंगे। यह भी कैसी विडम्बना है कि नये राज्य का निर्माण तो आदिवासी विकास के संदर्भ में हुआ था, लेकिन जो भी नीतियां बन रही हैं उनमें तो आदिवासी विकास के लिए जगह है ही नहीं। है भी तो मात्र दिखावे के लिये। अन्त में उद्योगपति, अमीर तथा शक्तिशाली लोग ही लाभ उठाएंगे, न कि स्थानीय लोग जिनके लिए शुरू में झारखण्ड का निर्माण किया गया।



यही प्रवृति राज्य में अशांति फैलाती है। झारखण्ड केन्द्र का एक उपनिवेश बन गया है तथा राज्य में नक्सलवादी आंदोलन को बढ़ावा देता है। सरकार की नीतियों में वायदे तो बहुत हैं लेकिन हुआ कुछ नहीं है। हो सकता है भविष्य में कुछ हो। सरकार विकास की बात तो करती है लेकिन यह विकास का मॉडल अपने आप में बहस का मुद्दा है। लेकिन ज्यादा महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान में राज्य सरकार जनजातीय विकास में वास्तव में रूचि रखती है। औद्योगिक नीति 2001 से तो ऐसा नहीं प्रतीत होता। इसमें झारखण्ड में विकास की प्रक्रिया में जनजातीय लोगों की पहचान को पूर्णतः नजरअंदाज किया गया है, जैसे नीचे चर्चा है।

### जनजातीय पहचान का नजरअंदाज

जनजातीय लोगों की पहचान उनके जीवन के विभिन्न फलकों से जाहिर होती है, जैसे – भौगालिक, सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक, कला तथा संगीत (मुण्डा 2002 : 108-21)। झारखण्ड राज्य की अलग माँग करने का एक कारण जनजातीय पहचान तथा संस्कृति की सुरक्षा करना था, लेकिन सरकार की उदासीनता तथा लापरवाही के कारण जनजातीय लोगों का मोहभंग हो गया। छोटानागपुर पठार पर झारखण्ड में रहने वाले 30 जनजातीय समूह निवास कर रहे हैं। पिछले 60 सालों में जनजातीय लोगों के विस्थापित होने का बड़ा कारण बाहर से आकर बसने वालों की तदाद बढ़ना है। एक अध्ययन के अनुसार झारखण्ड में 1951 से 1995 तक विस्थापित व्यक्तियों की कुल संख्या 41.27 प्रतिशत थी, जो जनजातीय लोग थे। (एक्का तथा आसिफ 2000:95)।

सरकार की वर्तमान नीतियां जनजातीय लोगों की क्षेत्रीय पहचान की सुरक्षा कवच होने के बजाय इसके विघटन को बढ़ाने में सहायक हैं, जो 1984 के औपनिवेशिक काल में भूमि अधिग्रहण अधिनियम के संशोधन के साथ शुरू हुआ था। जहाँ भूमि, जल, जंगल तथा पर्यावरण के वाणिज्यिक शोषण हो रहा है, जिसका खामियाज़ा जनजातीय लोगों को भुगतना पड़ रहा है।

यहाँ पर संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति के लिए सियाटल के मुखिया द्वारा भेजा गया पत्र याद आता है, जो 1854 में लिखा गया था कि –

> "तुम जमीन की गरमाहट तथा आकाश को कैसे खरीद व बेच सकते हो? हमारे लिए यह विचार बड़ा ही अनोखा है। यदि वायु की स्वच्छन्दता तथा पानी के हिलोरों पर हमारा कोई वश नहीं है, तो हम उन्हें कैसे खरीद सकते हैं? इस धरती का हर भाग मेरे लोगों के लिये पवित्र है। हर चमकती तेज सूई, हर अंश, काले वनों में हर ओस, हर स्वच्छ कीटपतंग हमारे लोगों के अनुभव तथा याददाश्त में पवित्र है...यह वह हवा है, जिसमें हमारे पूर्वजों ने पहली सांस ली तथा आहें भरीं। यदि हम अपनी जमीन तुम्हें बेचते हैं, तो तुम इसे पृथक व पवित्र रखोगे, एक ऐसे स्थान की तरह, जहाँ हर श्वेत आदमी भी इस हवा के झोंके का आनंद ले सकता है, जो घास के फूलों की खुशबू से सुगन्धित है।"

जहाँ तक सामाजिक एकात्मकता का सम्बन्ध है, जनजातीय लोगों की अपनी पहचान एक जातीय समूह के रूप में होती है। उनकी सामाजिक–प्रमाणिकता उनके गिलजुल कर तथा संगठित रहने में है। जनजातीय समुदायों की मुख्य मान्यताएँ प्रकृति से सम्बंधित (जमीन, जंगल, जल से) हैं, जो कि उनके मित्रभाव तथा सहजीवन को लेकर चलते हैं। जनजातीय मान्यता सहअस्तित्व पर ज्यादा जोर देती है। जमीन का सामूहिक स्वामित्व जनजातीय व्यवस्था में मौजूद है तथा इसीलिए इसमें जमीन के गैर–पदार्थीकरण का भाव भी मौजूद है, क्योंकि उनकी जमीनें उनके बीते काम, आज और आने वाले कल की पीढ़ियों से सम्बन्धित हैं। जबकि आधुनिक विकास की मान्यताएँ सभी प्रकार से जमीन के पदार्थीकरण तथा दूसरे प्राकृतिक संसाधनों को केवल लाभ कमाने वाले संसाधन के रूप में देखती हैं। इसीलिए जनजातीय समाज में अर्थव्यवस्था का रूप सामूहिकता का है।

जनजातीय विकास कार्यक्रमों के असफल होने का एक कारण यह है कि विकास के पश्चिमी मॉडल को अपनाया गया, जो कि प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के सिद्धांत पर आधारित था। इसी कारण समयान्तराल के साथ–साथ जनजातीय समाज आंतरिक उपनिवेशीकरण के शिकार हुए। गैर–भागीदारी अधिशासन के कारण जनजातीय लोग अपने परम्परागत निवास से भगाए गए। आज यही मॉडल झारखण्ड के विकास में चल रहा है। जनजातीय समाज की सामुदायिक जागरूकता को प्रतियोगिता, व्यक्तिवाद तथा पूँजीवाद का रास्ता दिखाया गया है। झारखण्ड में तथाकथित विकास की प्रक्रिया हाशिए के समुदायों के विकास तथा अधिकारों के प्रति संवेदनशीलता नहीं है। विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की बात है। पुनर्वास के लिए पर्याप्त सुरक्षा नहीं है। इसके अतिरिक्त जनजातीय पारम्परिक कानूनी अधिकारों एवं सुरक्षा को बढ़ावा नहीं दिया गया है। उदारीकरण, निजीकरण तथा भूमण्डलीकरण के प्रतिकूल प्रभाव से कोई बचाव नहीं है। यह वर्तमान विकास मॉडल जनजातीय लोगों के कल्याण तथा उनके जीवन पर विपरीत प्रभाव डाल रहा है। उनकी शिक्षा व्यवस्था, जिसमें उनकी भाषा, इतिहास तथा तकनीकी भी सम्मिलित है, के लिए कोई प्रावधान नहीं है, या यूं कहें कि उनकी संस्कृति, विचार तथा लोककथा, आदि के बारे में कोई प्रावधान नहीं है।

यही नहीं, जनजातीय धर्मों, आत्मव्यवहार, उनकी पवित्र जगहों या आत्मचिंतन के संस्थानों की कोई सुरक्षा तथा सम्मान नहीं है। इसके साथ–साथ स्वास्थ्य सेवाओं तथा सामान्य शिक्षा के समान व्यवहार के लिए भी अपर्याप्त प्रावधान है। महिलाओं के अधिकारों के प्रश्न पर सुस्पष्ट स्थिति के लिए न तो राज्य और न ही केन्द्रीय सरकार के पास कोई विकल्प है। बच्चों और नौजवानों को बदलते सामाजिक वातावरण से बचाने के लिए तथा उनके अधिकारों की दिशा में एक भी राज्य प्रतिज्ञा–पत्र को स्वीकृति नहीं मिली है। यही नहीं, जनजातीय जमीनों पर बढ़ते सैन्यकरण की समस्या के लिए भी कोई संदर्भ नहीं दिया गया है। इसके अलावा इस नवनिर्मित राज्य झारखण्ड में जीवन का अधिकार तथा गरिमापूर्ण जीविका का अधिकार, इन दोनों अधिकारों में से एक को भी मान्यता नहीं दी गई है।



संक्षेप में, जो नया राज्य जनजातीय लोगों के विकास के लिए विभाजित हुआ था, वहाँ केवल दबंग लोगों को ही मान्यता मिली है। इसने जनजातीय लोगों को उनकी पहचान तथा संस्कृति को गरिमा देने के बजाय उन्हें आत्मसात करने में ज्यादा बढ़ावा दिया है। मेरा तर्क यह है कि छोटे राज्यों के मात्र निर्माण द्वारा जनजातीय राज्यों का विकास हो जाए, ऐसा सम्भव नहीं है, लेकिन संघवाद तथा लोकतंत्रवाद, जो मतैक्य तथा भागीदारी पर आधारित है, इसे संभव बना सकता है। आदिवासी झारखण्ड में यदि सचमुच विकास करना है तो वहाँ सामाजिक परिवर्तन की जरूरत है। लोकतांत्रिक ढाँचे के लिए वहाँ प्रभुत्वशाली सम्बन्धों को तोड़ा जाए, क्योंकि विकास के अवयव के रूप में संस्कृति की अहम भूमिका होनी चाहिए। प्रतिरोधी मान्यता व्यवस्था (counter value system) के निर्माण द्वारा लोकतंत्र को स्थापित किया जाए। इसके अलावा विकास की प्रक्रिया में महिलाओं को भी हिस्सेदार बनाया जाए। इसलिए इन सभी घटकों को लेकर परिवर्तन की आवश्यकता है। वर्तमान वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास के लिए जनजातीय समाज के रास्ते खोलने की जरूरत है, क्योंकि परिवर्तन बाहर से तो उठकर आएगा नहीं। यह तो आंतरिक रूप से होना है। अब जो जनजातीय समाज आधुनिक विकास की मान्यताओं के द्वारा आत्मसात् हो रहा है, उसकी बजाय उसे ऐसे बाह्य गुणों का आत्मसात करना चाहिए जो इस समाज के लिए कल्याणकारी हैं।

## संदर्भ सूची


1. ड्रेज, जीन एण्ड सेन, अमर्त्य. इण्डिया डेवलपमेंट एण्ड पार्टीसिपेशन, न्यू देल्ही : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2002.
2. एक्का, एलेक्स एण्ड आसिफ, मोहम्मद. डेवलपमेंट इन्ड्यूस्ड डिसप्लेसमेंट एण्ड रिहैबिलिटेशन इन झारखण्ड, 1951 टू 1995: ए डाटावेस ऑन इट्स एक्सटेंट एण्ड नेचर, न्यू देल्ही : इण्डियन सोशल इन्स्टीट्यूट. 2000.
3. ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट 2004 : कल्चरल लिबर्टी इन टुडेस डायभर्स वर्ल्ड, पब्लिश्ड फॉर दि यूनाइटेड नेशन्स डेवलपमेंट प्रोग्राम (यूएनडीपी). 2004.
4. इण्डस्ट्रीयल पॉलिसी ऑफ झारखण्ड. 2001. गोवर्नमेंट ऑफ झारखण्ड, डिपार्टमेंट ऑफ इण्डस्ट्रीज़ – www.jharkhand.com.
5. खान, आरशी, "रिजनल पॉलिटिकल पार्टीज़," इन वीजापुर, अब्दूलरहीम पी. (एडी) डायमेंशन्स ऑफ फेडरल नेशन विल्डिंग. न्यू देल्ही : सेंटर फॉर फेडरल स्टटीज़. 1998.
6. कुमार, सुरेश "कल्चरल प्लूरलिज़्म, मल्टीपल आइडेन्टीज़ एण्ड फेडरल नेशन विल्डिंग," इन वीजापुर, अब्दूलरहीम पी. (एडी) डायमेंशन्स ऑफ फेडरल नेशन विल्डिंग न्यू देल्ही : सेंटर फॉर फेडरल स्टडीज़. 1998.

7. कुमार, प्रदीप. "डिमांड फॉर न्यू स्टेट्स : कल्चरल आइडेंटीटी लूजेस ग्राउण्ड टू अर्ज फॉर डेवलपमेंट," इन इपीडब्ल्यू. अगस्त 26 सित. 1/सित. 2-8, 2000. वॉल्यूम. XXXV. नं. 35-36, पृष्ठ 3078-82.

8. कुमार, संजय. "क्रिएशन ऑफ न्यू स्टेट्स : रैशनल एण्ड इम्पलीकेशन्स," इन इपीडब्ल्यू, सितम्बर 7-13, 2002, वॉल्यूम. XXXVII, नं. 36, पृष्ठ 3705-09.

9. मुण्डा, रामदयाल. आदिवासी अस्तित्व और झारखण्डी अस्मिता के सवाल (हिन्दी). न्यू देल्ही : प्रकाशन संस्थान 2002.

10. नारायण, के. आर. "फॉरवर्ड," इन वीजापुर, अब्दूलरहीम पी. (एडी.) डायमेंशन्स ऑफ फेडरल नेशन बिल्डिंग. न्यू देल्ही : सेंटर फॉर फेडरल स्टडीज़. 1998. पृष्ठ. vii-ix.

11. वूमेन, टी. के. "फ्रॉम प्लूरल सोसाइटी टू प्लूरलिज़्म : टूवर्ड्स, जस्ट एण्ड ह्यूमेन सोशल ऑर्डर इन इण्डिया," इन वीजापुर, अब्दूलरहीम पी. (एडी.) डायमेंशन्स ऑफ फेडरल नेशन बिल्डिंग. 1998.

12. शर्मा, सिद्धार्थ. "क्रिएशन ऑफ न्यू स्टेट्स : नीड फॉर कन्स्टीट्यूशनल परामीटर्स," इन इपीडब्ल्यू. सितम्बर 20-26, 2003, वॉल्यूम. XXXVIII, नं.. 38, पीपी. 3973-75.

13. सिंह, अजय कुमार, "फ्रॉम फेडरलिज़्म टू फेडरल नेशन बिल्डिंग : प्रेस्पेक्टिव ऑन बिल्डिंग सोसाइटी एण्ड पॉलिटी," इन वीजापुर, अब्दूलरहीम पी. (एडी.) डायमेंशन्स ऑफ फेडरल नेशन बिल्डिंग, न्यू देल्ही : सेंटर फॉर फेडरल स्टडीज़. 1998.

14. सिन्हा, सतीश कुमार. छोटानागपुर टेनेन्सी एक्ट, 1908. पटना : मलहोत्रा ब्रदर्स., 2003.

15. तिवारी एट एल, "कैपिटल मूड्स," इन द वीक, नवम्बर 12, 2000, पृष्ठ. 12-4.

16. _____, "डेट रॉव," इन द वीक, नवम्बर 19, 2000, पृष्ठ. 12-3.